

वसंत छिन गया

स्नेहा सिंह

पच्चीस सालों बाद सुरभि उस दिन आईने के सामने खड़ी थी। उसके जैसी सुंदर-सुडौल स्त्री के लिए इतना लंबा समय काफी लंबा माना जाए। लेकिन इतने वर्षों में उसे कभी ऐसी फुर्सत नहीं मिली थी कि उत्साह-उमंग के साथ वह आईने के सामने खड़ी हो सके। केवल कभी-कभार आईने के सामने सरसरी निगाह डालकर बालों की लटें ठीक कर लेती या कभी बीते समय की यादें ताजा करके भीतर की पीड़ा का अहसास कर लेती।

कुछ दिनों पहले तक उसके पास जीने का एक बहाना कहे या उद्देश्य था, उसका बेटा दीपक। लेकिन दीपक के विवाह के बाद तो यह उद्देश्य भी जैसे उसकी हथेली से फिसल गया था। पहले तो दीपक अपनी प्रत्येक जरूरत और इच्छा मां के सामने जाहिर करता। मां से रूठ जाना, उसकी गोद में सिर रखकर पड़े रहना और मां की मीठी डांट और प्यार का आनंद लेते रहना।

लेकिन शादी के बाद दीपक की पत्नी दीपाली ने सुरभि को उस अधिकार से भी वंचित कर दिया था। हालांकि शादी के बाद दीपक ने मां की देखभाल करना छोड़ा नहीं था, बल्कि अब तो उलटे वह सुरभि का और भी अधिक ध्यान रखता था और दीपाली भी सास का ध्यान रखती थी। सुरभि को जरा भी असुविधा न हो, इसकी वह बहुत सावधानी रखती थी। लेकिन सुरभि के मन में यह सब जैसे-तैसे बाकी जिंदगी के दिन गुजारने भर की औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं था।

फिर भी न जाने क्यों, उस दिन आईने ने जैसे खुद आगे बढ़कर सुरभि को अपने सामने खड़े होने का निमंत्रण दिया था। आईना जैसे सुरभि से कह रहा था, “सुरभि, दीपाली के पापा कुछ गलत थोड़े ही कर रहे हैं? अपनी ओर जरा ध्यान से देखो, क्या तुम आज भी पच्चीस साल पहले वाली सुरभि जैसी नहीं लगती? आज भी तुम्हारी आंखें, होंठ, बाल एक-एक अंग किसी को भी मोहपाश में बांध लेने वाले आकर्षक नहीं लगते?”

“लेकिन उनके साथ मेरा संबंध तो मजाक-मस्ती तक ही है। आखिर वे समझी हैं न? मजाक में ऐसा कह सकते हैं।”

“लेकिन फिर जब वह तुम्हारी तारीफ कर रहे थे, तब तुम्हारे गाल लाल क्यों हो गए थे? तुम्हारी आंखें शर्म से क्यों झुक गई थीं? और छाती की धड़कन क्यों बढ़ गई थी?”

आईने के सामने खड़े-खड़े अपने ही प्रतिबिंब से नजर मिलाना उसके लिए संभव नहीं रह गया। वह दौड़कर बिस्तर पर लेट गई। सपनों में खोई हुई वह खुली आंखों से कुछ देर छत की ओर ताकती रही।

सुरभि अतीत में खो गई।

सोलह साल की उम्र में उसकी शादी कर दी गई थी। उसके पति की यह दूसरी शादी थी। पहली पत्नी का निधन हो चुका था। पत्नी हमेशा बीमार रहती थी, इसलिए सुरभि के पति प्रकाश का जीवन अंधकारमय हो गया था। सरकारी नौकरी में ऊंचे पद पर होने के बावजूद उनका रहन-सहन, पहनना-ओढ़ना सब अस्तव्यस्त हो गया था। परिणामस्वरूप उन्होंने शराब को ही अपनी जीवनसंगिनी बना लिया था।

सुरभि इंटर पास कर चुकी थी। आर्थिक तंगी के कारण उसके पिता ने उसकी आगे की पढ़ाई रोक दी थी। इसके अलावा बेटी अधिक पढ़े, तो उसके लिए अधिक पढ़ा-लिखा दामाद ढूंढ़ने की समस्या भी थी। सुरभि के मामा प्रकाश के कार्यालय में ही काम करते थे और उनके निकट मित्र थे। सुरभि के लिए आग्रह-विनती करके मामा ने प्रकाश को राजी कर लिया, लेकिन उसकी उम्र के मुद्दे पर सुरभि के पिता भड़क उठे। फिर भी मामा ने अपनी सूझबूझ से जीजाजी को मना लिया और आखिरकार रिश्ता पक्का

कर दिया।

गुड़िया जैसी भोलीभाली सुरभि को चालीस साल के प्रकाश के घर बैठा दिया गया। लेकिन वह अपने पति का इतना ध्यान रखती थी, जैसे कोई मां अपने बच्चे की देखभाल करती हो। अपने स्नेह और समर्पण से उसने प्रकाश को इतना वश में कर लिया कि उनकी शराब की लत भी छूट गई।

एक साल में ही उसने प्रकाश को दीपक नाम के एक सुंदर बेटे का उपहार भी दे दिया। लेकिन दीपक अभी मुश्किल से एक साल का ही हुआ था कि लंबे समय तक शराब के सेवन के कारण आंतों के कैंसर से प्रकाश की जीवन-ज्योति बुझ गई और भरपूर जवानी के सिंदूरी तेज से चमकता उसके सौभाग्य का सूरज अस्त हो गया। वसंत की हवा से लहलहाते वृक्ष पर अचानक पतझड़ आ बैठा और सुरभि सुनसान-सी हो गई।

हालांकि बीती वसंत ऋतु ने उसकी गोद में दीपक नाम का एक फूल रख दिया था और दीपक ने भी पच्चीस साल की उम्र में बैंक में अधिकारी की नौकरी हासिल करके मां को उसकी तपस्या का फल दे दिया था। फिर कुछ समय बाद दीपक ने शादी की तो दीपाली नाम की सुशील-सुंदर बहू का उपहार भी सुरभि को मिला।

एक साल बाद दीपाली ने सुरभि से कहा कि उसके पिता दिनकरराय आने वाले हैं। हालांकि इससे पहले भी वे सुरभि से मिल चुके थे और अपने मोहक व्यक्तित्व से सुरभि को प्रभावित कर चुके थे।

लेकिन सुरभि को आज तक समझ में नहीं आया था कि दिनकरराय के व्यक्तित्व में ऐसा क्या था कि उनके साथ बातचीत करते समय दोनों की नजरें मिलते ही उसकी आंखें झुक जाती थीं और छाती की धड़कन बढ़ जाती थी।

फिर जब से उनके आने की खबर मिली थी, तब से उसके तन-मन और अंग-अंग में आनंद-उमंग की लहरें उठने लगी थीं और दिनकरराय के स्वागत-सत्कार की तैयारी में वह इतनी तल्लीन हो गई थी कि उनके पसंद-नापसंद की जानकारी दीपाली से लेने लगीं।

दिनकरराय के आने वाले दिन तो जैसे सुरभि के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। वह खुद ही सारी सजावट करने लगी थी। रसोई में जाकर दीपाली से कहने लगी, “मूंग की लचकदार दाल बनाना। मैं पूरणपोली और भरवां भिंडी की सब्जी बनाऊंगी। तुम्हारे पापा को बहुत पसंद है न?”

दीपक दिनकरराय को स्टेशन से बाइक पर लेकर आया। लेकिन सुरभि ने दीपाली के सामने उन्हें केवल हाथ जोड़कर नमस्कार किया और तुरंत नई बहू की तरह बेडरूम में चली गई और सीधे खाने के समय डाइनिंग टेबल के पास आकर खड़ी हो गई।

दिनकरराय ने मजाक करते हुए कहा, “समधनजी, खाने में तो साथ रहेंगी न? हम कुछ इतने पराए तो नहीं हैं।”

फिर भी खाना खाते समय सुरभि संकोचवश बैठी रही। उसकी गर्दन प्लेट की ओर झुकी रही और धीरे-धीरे निवाले निगलती रही। तभी दिनकरराय बोल उठे, “पूरणपोली और भिंडी की सब्जी तुमने बनाई है, दीपाली?”

“नहीं पापा, यह तो मम्मी ने बनाई है। अच्छी बनी है न?”

“अच्छी ही नहीं, बल्कि बहुत स्वादिष्ट बनी है। अगर तुम्हारी मम्मी रोज मुझे ऐसा भोजन खिलाएं, तो मैं यहां से जाने का नाम ही नहीं लूंगा।”

तारीफ सुनते ही सुरभि के गालों पर शर्म की लाली छा गई और उसकी आंखें फैल गईं।

तुरंत दीपक बोल उठा, “आप यहां रहकर तो देखिए। फिर देखिए कि मम्मी रोज आपको कैसे पसंद का खाना परोसती हैं। क्यों

मम्मी, ठीक है न?”

“ऐसा तो तुम कह रहे हो, दीपक। जिसे बनाना है, वह तो कुछ बोल ही नहीं रहीं।”

सुरभि तो जैसे लाजवंती का पौधा बन गई थी। दिनकरराय ने इस वाक्य के द्वारा जैसे अपना हाथ बढ़ाकर उसे छू लिया हो, वह भीतर तक हिल गई। कांपते होंठों से उसने दीपाली से कहा, “अच्छा दीपाली, मैं अब जाती हूं।”

फिर वह सीधे वॉशबेसिन की ओर दौड़ गई और हाथ-मुंह धोकर बेडरूम में आईने के सामने खड़ी हो गई।

हालांकि दिनकरराय ने पहली बार सुरभि के बारे में ऐसी बात नहीं कही थी। जिस दिन दीपाली के विवाह की बात करने आए थे, तब भी सुरभि से परिचय होते ही उन्होंने कहा था, “क्या आप दीपक की मम्मी हैं? मुझे विश्वास ही नहीं होता।”

लेकिन उस दिन की टिप्पणी और डाइनिंग टेबल पर की गई टिप्पणी में फर्क था। उस दिन केवल एक सच्चाई प्रकट की गई थी, जबकि आज एक भावना व्यक्त की गई थी। भले ही वह एक मजाक था, फिर भी उसमें छिपा निमंत्रण न समझे, इतनी सुरभि नादान नहीं थी।

लंबे समय तक आईने के सामने खड़ी सुरभि उस वाक्य का मर्म खोजती रही। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे कोई बीज अचानक उसके मन में अंकुरित होकर एक डाली बनने के लिए बेचैन हो उठा हो।

रात को जैसे कांटे चुभ रहे हों, सुरभि बिस्तर पर व्याकुल होकर करवटें बदलती रही। रह-रहकर उसकी चेतना में तीखे कांटे और अधिक नुकीले होकर चुभते रहे। अचानक उसे क्या हुआ, कौन जाने। वह उठी और जिस कमरे में दिनकरराय सो रहे थे, उसकी खिड़की के सामने जाकर खड़ी हो गई।

आराम से सो रहे दिनकरराय को वह काफी देर तक निहारती रही। उनकी हृष्टपुष्ट बांहें, चौड़ी छाती, ऊंचा ललाट और ललाट पर लहराती घुंघराली बालों की लटें। वह मन ही मन बोल उठी, “आप भी दीपाली के पापा जैसे कहां लगते हैं?”

तभी अचानक दिनकरराय ने करवट बदली और सुरभि थोड़ा चौंककर तुरंत अपने कमरे में वापस चली गई।

केवल दो दिनों के लिए आए दिनकरराय दीपाली के आग्रह के कारण कुछ और रुक गए और उसकी जिद के कारण ही वह सुरभि को भोजन के लिए खुद बुलाने जाते।

फिर सुरभि भी धीरे-धीरे उनके साथ खुलकर और हल्के मन से बातचीत करने लगी। हालांकि उसके अधिकांश जवाब ‘हां’ या ‘नहीं’ जैसे छोटे-छोटे ही होते थे। फिर भी उनके सान्निध्य में उसे ऐसा लगता था, जैसे उनके सम्मोहक व्यक्तित्व से वह और अधिक खिंच रही हो। लेकिन वह इसे व्यक्त नहीं कर पाती थी। एक बार दीपक-दीपाली को किसी की जन्मदिन की पार्टी में जाना पड़ा और सुरभि को घर में दिनकरराय के साथ अकेले रहना पड़ा। अपने पति की मृत्यु के बाद यह एक ही व्यक्ति था, जिसे अधिकारपूर्वक सुरभि के घर में रहने का अवसर मिला था और वह अवसर भी ऐसा था कि वह विवश होकर उनके प्रति आकर्षण अनुभव कर रही थी।

फिर तो जब वह दर्पण के सामने खड़ी होती, उसका मन भीतर से पुकार उठता कि एक परपुरुष के साथ इतनी निकटता बढ़ाना पाप कहलाता है। लेकिन अज्ञात मन से सवाल उठता, “क्या मैं स्त्री हूं, इसलिए पति की मृत्यु के बाद मुझे पूरी जिंदगी रेगिस्तान की रेत की तरह वीराने में ही तपते रहना है?”

लेकिन आज दोनों घर में अकेले, अपने-अपने कमरों में थे। दिनकरराय से मिलने के लिए उसका मन कोई बहाना खोज रहा था। आखिरकार चाय-कॉफी के बहाने वह उनके कमरे में चली गई।

“कॉफी पिएंगे न?”

“आपकी इच्छा हो तो जरूर पिऊंगा।”

उमंग में आकर वह तुरंत दो कप कॉफी बनाकर ले आई और बाहर जाने लगी। तभी दिनकरराय ने कहा, “आप भी बैठिए न। साथ ही कॉफी पीते हैं।”

सुरभि की धड़कन बढ़ गई। पैर कांपने लगे। वह वहीं कुर्सी पर बैठ गई।

“मेरा स्वभाव बहुत मिलनसार और हंसमुख है। पतझड़ को भी वसंत की नजर से देखने की मेरी आदत है। आपको शायद मेरा यह मिजाज अच्छा न लगे, तो माफ करना।”

सुरभि के मन में तो हुआ कि कह दे कि कौन नहीं चाहता कि उसका जीवन वसंती लहरों से खुशहाल रहे? आपके लिए भला पतझड़ और वसंत में क्या अंतर? एक वसंत छिन जाए तो जीवन में दूसरी बहार ले आइए। लेकिन मुझे ऐसा अधिकार कहां है?

फिर भी उसने केवल इतना ही कहा, “नहीं, नहीं। इसमें बुरा क्या लगना? आपका मिजाज ही मजाकिया है।”

फिर वह अपने कमरे में आ गई।

इस बीच देर रात दीपक-दीपाली के वापस लौटने तक उसने दिनकरराय को खाना भी खिला दिया था।

लेकिन अगले दिन दिनकरराय को सुबह की ट्रेन से जाना था, इस ख्याल से सुरभि बेचैन हो गई। पूरी रात करवटें बदलती रही।

हालांकि दिनकरराय ने उसके रेगिस्तान जैसे हृदय में एक झरना प्रकट कर दिया था, जिसे वह केवल मृगतृष्णा मानती थी।

वह काफी देर तक बिस्तर पर पड़ी रही। आखिर दीपक दीपाली ने आकर उसे हिलाते हुए कहा, “अरे मम्मी, तबीयत तो ठीक है न? चलिए, पापा जा रहे हैं।”

फ्रेश होकर बाहर आई तो दिनकरराय सूटकेस लेकर सामने ही बैठे थे। शायद वह सुरभि का ही इंतजार कर रहे थे। उसे देखते ही खड़े हो गए और हाथ जोड़कर बोले, “बस तो फिर। विदा लेता हूं। कोई भूल-चूक हुई हो तो माफ करना।”

सुरभि ने आंखें उठाकर उनकी ओर देखा। वही मुस्कराता हुआ चेहरा। उसके हाथ भी अपने आप जुड़ गए। उसने मुस्कराने की कोशिश की, लेकिन एक व्यथा के साथ।

दीपाली के साथ खिंचती-खिंचती वह सीधे दरवाजे तक आ गई। दिनकरराय दीपक की बाइक पर पीछे बैठ गए थे। उन्होंने दीपाली और सुरभि को विदा लेते हुए हाथ उठाया।

दीपक ने बाइक स्टार्ट की। बाइक की घरघराहट उसके कानों से टकराते ही सुरभि के हृदय में ऐसी पीड़ा होने लगी, जैसे पहिया उसके ऊपर से गुजर गया हो। उसकी आंखों में आंसू छलक आए। लेकिन फिर तुरंत दीपाली की मौजूदगी का ख्याल आते ही उसने मुंह फेर लिया और दीपाली की नजर उसके चेहरे पर पड़ती और उसके मनोभाव जान जाती, उससे पहले ही वह चुपचाप घर के अपने कमरे में चली गई।

सुरभि की एकाकीपन के अंधेरे कमरे में क्षणभर स्नेह-किरण की चमक हुई और फिर हृदय व्यथित हो गया। तपते रेगिस्तान में एक बादल बरसा और पलभर के लिए मृगतृष्णा को छलका गया।